गोरा

अध्याय 17

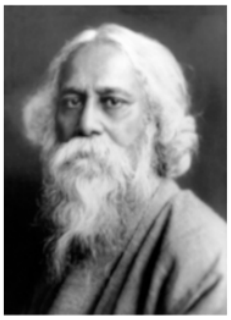

रविंद्रनाथ टैगोर

# गोरा

# अध्याय 17

https://www.hindiadda.com/gora-part-xvii/

आनंदमई से विनय ने कहा, "देखो माँ, मैं तुम्हें सत्य कहता हूँ, जब-जब भी मैं मूर्ति को प्रणाम करता रहा हूँ मन-ही-मन मुझे न जाने कैसी शर्म आती रही है। उस शर्म को मैंने छिपाए रखा है- बल्कि उल्टे मूर्ति-पूजा के समर्थन में अच्छे-अच्छे प्रबंध लिखता रहा हूँ। मगर सच्ची बात तुम्हें बता दूँ, जब भी मैंने प्रणाम किया है मेरे अंत:करण ने गवाही नहीं दी।"

आनंदमई ने कहा, "तेरा मन क्या इतना सीधा है! तू तो मोटी बात कोई समझ ही नहीं सकता- हर बात में कोई-न-कोई बारीकी देखता है। इसीलिए तेरे मन का खटका कभी मिटता नहीं।"

विनय ने कहा, "बिल्कुल यही बात है, मेरी बुध्दि ज्यादा सूक्ष्म है तभी मैं जो विश्वास नहीं करता वह भी बाल की खाल उतारने वाली दलीलों से साबित कर दे सकता हूँ। जैसी सुविधा होती है वैसे अपने को या दूसरे को बहला लेता हूँ। इतने दिन धर्म के बारे में जो कुछ तर्क मैं करता रहा हूँ वह धर्म की ओर से नहीं, गुट की ओर से करता रहा हूँ।"

आनंदमई ने कहा, "जब धर्म की ओर सच्चा लगाव न हो तब ऐसा ही होता है। तब धर्म भी वंश, इज्जत, रुपए-पैसे की तरह अहंकार करने की सामग्री बन जाता है।"

विनय, "हाँ, जब हम यह बात ही नहीं सोचते कि यह धर्म है, यही सोचकर लड़ते-भिड़ते हैं कि यह हमारा धर्म है। अब तक मैंने भी यही किया है। फिर भी अपने को बिल्कुल भुलावे में डाल सका हूँ ऐसा नहीं है, जहाँ मेरा विश्वास नहीं होता वहाँ मैं भक्ति का ढोंग करता रहा हूँ इस पर मैं बराबर अपने सामने ही शर्मिंदा होता रहा हूँ।"

आनंदमई बोलीं, "यह क्या मैं जानती नहीं। तुम लोग जो साधारण लोगों से बहुत बढ़-चढ़कर बातें करते हो इसी से साफ समझ में आ जाता है कि मन के भीतर कहीं खाली स्थान है जिसे भरने के लिए तुम्हें बहुत मसाला खर्च करना पड़ता है। भक्ति सहज हो तो इस सब की ज़रूरत नहीं होती।"

विनय ने कहा, "तभी तो तुमसे पूछने आया हूँ, कि जिसमें मैं विश्वास नहीं करता उसमें विश्वास जताना क्या उचित है?"

आनंदमई ने कहा, "सुनो ज़रा! यह भी कोई पूछने की बात है?"

विनय ने कहा, "माँ, मैं कल ब्रह्म-समाज में दीक्षा लूँगा।"

विस्मित होकर आनंदमई ने कहा, "वह क्यों, विनय? दीक्षा लेने की ऐसी क्या ज़रूरत आ पड़ी?"

विनय ने कहा, "क्यों ज़रूरत आ पड़ी, अब तक यही बात तो समझा रहा था!"

आनंदमई ने पूछा, "तेरे जो विश्वास हैं उन्हें लेकर क्या तू हम लोगों के समाज में नहीं रह सकता?"

विनय ने कहा, "रहूँगा तो वह धोखा होगा।"

आनंदमई बोलीं, "धोखा किए बिना रहने का साहस नहीं है? समाज के लोग सताएँगे- तो क्या उसे सहता हुआ नहीं रह सकेगा?"

विनय ने कहा, "माँ, मैं अगर हिंदू-समाज के मत पर नहीं चलता तो"

आनंदमई ने कहा, "हिंदू-समाज में जहाँ तीन सौ तैंतीस करोड़ मत चल रहे हैं वहाँ तेरा ही मत भला क्यों चलेगा?"

विनय ने कहा, "किंतु माँ, अगर हमारे समाज के लोग कहे कि तुम हिंदू नहीं हो-तो क्या मैं ज़बरदस्ती कहूँगा कि मैं हिंदू हूँ?"

आनंदमई ने कहा, "मुझे तो हमारे समाज के लोग ख्रिस्तान कहते हैं- मैं तो उनके काज-कर्म में भी उनके साथ बैठती-खाती नहीं। फिर भी उनके मुझे ख्रिस्तान कहने से ही क्या वह बात मुझे मान लेनी होगी- यह तो मेरी समझ में नहीं आता। जिसे मैं उचित मानती हूँ उसके लिए भागकर कहीं जा छिपना मैं गलत समझती हूँ।"

विनय कुछ उत्तर देने जा रहा था कि आनंदमई ने उसे अवकाश न देकर कहा, "विनय, मैं तुझे बहस नहीं करने दूँगी, यह बहस की बात नहीं है। तू मुझसे कुछ छिपा नहीं सकता। मुझे तो साफ दीखता है कि तू मेरे साथ बहस करने के बहाने ज़बरदस्ती अपने को भुलाने का प्रयत्न कर रहा है। लेकिन इतने बड़े महत्व के मामले में अपनी ऑखों में यों धूल डालने की चेष्टा न कर।"

सिर झुकाकर विनय ने कहा, "लेकिन माँ, चिट्ठी लिखकर मैंने वचन दे दिया है कि कल मैं दीक्षा लूँगा।"

आनंदमई ने कहा, "यह नहीं हो सकता। अगर परेशबाबू को समझाकर कहेगा तो वह कभी ज़ोर नहीं डालेंगे।'

विनय ने कहा, "परेशबाबू का इस दीक्षा के लिए कोई ज़ोर नहीं है। वह इस अनुष्ठान में योग नहीं देंगे।"

आनंदमई ने कहा, "तब तुझे कुछ भी सोचने की ज़रूरत नहीं है।"

विनय ने कहा, "नहीं माँ, बात पक्की हो गई है, अब वापस नहीं हो सकती- किसी तरह नहीं।"

आनंदमई ने पूछा, "गोरा को बताया है?"

विनय ने कहा, "गोरा से भेंट ही नहीं हुई।"

आनंदमई ने कहा, "क्यों, गोरा क्या अभी घर में नहीं है?"

विनय ने कहा, "नहीं, सुना है सुचरिता के घर गया है।"

विस्मित होकर आनंदमई ने कहा, "वहाँ तो वह कल गया था।"

विनय ने कहा, "आज भी गया है।"

इसी बीच ऑंगन में पालकी वालों की पुकार सुनाई दी। यह सोचकर कि आनंदमई के कुटुंब की कोई स्त्रियाँ आई होंगी विनय बाहर चला गया।

ललिता ने आकर आनंदमई को प्रणाम किया। आज आनंदमई ने ललिता के आने की बात कल्पना में भी नहीं सोची थी। चकित होकर ललिता के चेहरे की ओर देखते ही उन्होंने समझ लिया कि विनय की दीक्षा के मामले को लेकर किसी मुश्किल में पड़कर वह उनके पास आई है।

बात करना सरल बनाने के खयाल से उन्होने कहा, "बेटी, तुम आ गईं यह बहुत अच्छा हुआ। अभी-अभी विनय यहाँ थे, कल वह तुम लोगों के समाज में दीक्षा लेंगे, अभी मेरे साथ यही बात हो रही थी।"

ललिता ने कहा, "वह क्यों दीक्षा लेने जा रहे हैं, उन्हें क्या ज़रूरत है?"

अचंभे में आकर आनंदमई ने कहा, "ज़रूरत नहीं है, बेटी?"

ललिता ने कहा, "मुझे तो सोचकर भी कोई नहीं दीखती।"

आनंदमई ललिता का अभिप्राय न समझ पाकर चुपचाप उसके चेहरे की ओर देखती रहीं।

मुँह नीचा किए हुए ललिता ने कहा, "अचानक इस ढंग से दीक्षा लेने जाना उनके लिए असम्मान की बात है। यह अपमान वह किसलिए स्वीकार करने चले हैं?"

किसलिए? यह क्या ललिता नहीं जानती? क्या इसमें ललिता के प्रसन्न होने का कोई कारण नहीं है?

आनंदमई ने कहा, "कल ही दीक्षा का दिन है, उसने पक्का वचन दिया है- अब बदलने का अवकाश नहीं है, विनय ने तो ऐसा ही कहा था।"

अपनी दीप्त दृष्टि ललिता ने आनंदमई के चेहरे पर टिकाकर कहा, "इन सब मामलों में वचन देने का कोई मतलब नहीं है, अगर परिवर्तन ज़रूरी हो तो करना ही होगा।"

आनंदमई ने कहा, "बेटी, तुम मुझसे लज्जा न करो, मैं तुम्हें सारी बात बताती हूँ। मैं अब तक विनय को यही समझा रही थी कि उसका धर्म-विश्वास चाहे जो हो, समाज को छोड़ना उसके लिए ठीक नहीं है, ज़रूरी भी नहीं है। वह मुँह से चाहे जो कहता हो, किंतु वह खुद यह बात न समझता हो ऐसा भी नहीं लगता। लेकिन बेटी, तुमसे तो उसके मन का भाव छिपा नहीं है। वह ज़रूर यही समझता है कि समाज छोड़े बिना तुम लोगों से उसका संबंध नहीं हो सकेगा। शर्म न करो बेटी, मुझे ठीक-ठीक बताओ, यह बात क्या सच नहीं?"

आनंदमई के चेहरे की ओर ऑंखें उठाकर ललिता ने कहा, "माँ, तुम से मैं कुछ भी नहीं छिपाऊँगी। मैं तुमसे साफ कहती हूँ, मैं यह सब नहीं मानती। बहुत अच्छी तरह मैंने सोचकर देखा है, ऐसा कभी नहीं हो सकता कि मनुष्य का जो भी धर्म-विश्वास या समाज हो उसे बिल्कुल छोड़कर ही दो मनुष्यों का परस्पर योग हो सकेगा। ऐसा हो तो हिंदू और ख्रिस्तान में दोस्ती ही नहीं हो सकती। तब तो बड़ी-बड़ी दीवारें खड़ी करके एक-एक सम्प्रदाय को एक-एक बाड़े में बंद कर देना ही ठीक है।"

आनंदमई का चेहरा खिल उठा। उन्होंने कहा, "अहा, तुम्हारी बातें सुनकर बड़ी खुशी हो रही है बेटी। मैं भी तो यही बात कहती हूँ, एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति का रूप-गुण-स्वभाव कुछ न मिलने पर भी दोनों के मिलने में कोई बाधा नहीं होती- फिर मत के कारण ही क्यों बाधा हो? बेटी, तुमने तो मुझे बचा लिया- मैं विनय के लिए बड़ी चिंतित थी। अपना सारा मन उसने तुम लोगों को सौंप दिया है, यह मैं जानती

हूँ। तुम लोगों से उसके संबंध पर कहीं कोई विघ्न आया तो विनय उसे किसी तरह नहीं सह सकेगा। इसीलिए उसे रोकना मुझे कितना खल रहा था, यह ईश्वर ही जानता है। लेकिन उसका कितना बड़ा सौभाग्य है कि उसका इतना बड़ा संकट इतनी आसानी से टल जाय। यह कोई छोटी बात नहीं है। अच्छा, एक बात पूछूँ,इस बारे में परेशबाबू से कोई बात हुई है?"

अपनी लज्जा दबाते हुए ललिता ने कहा, "नहीं, नहीं हुई। लेकिन मैं जानती हूँ, वह ठीक-ठीक समझेंगे।"

आनंदमई ने कहा, "यदि वही न समझने वाले होते तो इतनी बुध्दि और मनोबल तुम और कहाँ से पातीं? बेटी, मैं ज़रा विनय को बुला लाऊँ,तुम्हारा उससे अपने मुँह से बात कर लेना ठीक होगा। इस बीच मैं एक बात तुमसे कर लूँ विनय को मैं बचपन से देखती आ रही हूँ, वह ऐसा लड़का है कि उसके लिए तुम्हें चाहे जितना दु:ख स्वीकार करना पड़े पर वह उस सबको सार्थक कर देगा, यह मैं दावे के साथ कह सकती हूँ। मैंने कई बार सोचा है, वह कौन भाग्यवती होगी जो विनय को पाएगी। बीच-बीच में कई संबंधों की बात आई है पर मुझे कोई पसंद नहीं आया। बीच-बीच में कई संबंधों की बात आई है पर मुझे कोई पसंद नहीं आया। लेकिन आज देख पा रही हूँ कि वह भी कुछ कम भाग्यवान नहीं है।

इतना कहती हुई आनंदमई ने ललिता की ठोड़ी छूकर चुंबन लिया और फिर विनय को बुलवा भेजा। फिर लछमिया को कमरे में छोड़कर वह ललिता के लिए जलपान लाने की बात कहकर वहाँ से चली गईं।

आज ललिता और विनय के मध्य संकोच की कोई गुंजाइश न थी। दोनों के जीवन पर जो एक समान संकट आन पड़ा था, उसी की चुनौती ने उनके परस्पर संबंध को सहज और गहरा कर दिया था। किसी आवेश का धुआँ उनके बीच कोई रंगीन आवरण नहीं खड़ा कर रहा था। बिना किसी भूमिका के विनीत गंभीर भाव से चुपचाप और कुंठित हुए बिना यह बात उन्होंने स्वीकार

कर ली थी कि दोनों के हृदय मिल गए हैं, और उनके जीवन की धाराएँ गंगा-यमुना की तरह एक पुण्य तीर्थ पर मिलने के लिए बढ़ रही हैं। समाज ने उन दोनों को नहीं मिलाया, किसी संप्रदाय ने उन दोनों को नहीं मिलाया, उन दोनों का बंधन कोई कृत्रिम बंधन नहीं है, यह स्मरण करके दोनों ने अपने मिलन को एक ऐसे धर्म-मिलन के रूप में अनुभव किया, जिसका धर्म अत्यंत वृहत् भाव से सरल है। जो

किसी छोटी बात को लेकर विवाद नहीं करता जिसमें कोई पंचायती पंडित अड़ंगा नहीं लगा सकते। ललिता ने दीप्त चेहरे और आँखों से कहा, "आप अपने को छोटा करके और दीन होकर मुझे ग्रहण करने आएँगे, यह अपमान मैं नहीं सह सकूँगी। आप जहाँ हैं वहीं अविचलित रहें यही मैं चाहती हूँ।"

विनय ने कहा, "आप भी जहाँ आपकी प्रतिष्ठा है वहीं स्थिर रहें, आप को वहाँ से ज़रा भी हिलना नहीं होगा। प्रीति अगर प्रभेदों को न सह सकती, तो फिर दुनिया में कोई प्रभेद होता ही क्यों?"

लगभग बीस मिनट तक दोनों में जो कुछ बातचीत हुई उसका निचोड़ यही था। वे हिंदू हैं या ब्रह्म, इस प्रश्न को वे भूल गए। उनके मन में निष्कंप दीप-शिखा की तरह यही बात स्थिर होने लगी कि वे दोनों मानव आत्माएँ हैं।

उपासना के बाद परेशबाबू अपने कमरे के सामने बरामदे में चुपचाप बैठे थे। सूर्य अभी-अभी अस्त हुआ था।

इसी समय ललिता को साथ लेकर विनय वहाँ पहुँचा। परेशबाबू को प्रणाम करके उसने उनकी चरण-रज ली।

दोनों को इस ढंग से प्रवेश करते देखकर परेशबाबू कुछ चकित हुए। उन्हें बैठाने के लिए वहाँ और कुर्सियाँ न थीं, इसलिए वह बोले, "चलो,कमरे में चलें। विनय ने कहा, "नहीं, आप उठें नहीं। कहकर वहीं फर्श पर बैठ गया। उससे कुछ हटकर ललिता भी परेशबाबू के पैरों के पास बैठ गई।

विनय ने कहा, "हम दोनों एक साथ आपका आशीर्वाद लेने आए हैं। वही हमारे जीवन की सच्ची दीक्षा होगी।"

परेशबाबू विस्मित होकर उसके चेहरे की ओर देखते रहे।

विनय बोला, "बँधे-बँधाए नियमों वाले समाज के संकल्प मैं ग्रहण नहीं करूँगा। हम दोनों के भविष्य जीवन विनत होकर जिस दीक्षा के सच्चे बंधन में बँध सकते हैं, वह दीक्षा आपका आशीर्वाद ही है। हम दोनों का हृदय भक्तिपूर्वक आप ही के चरणों में अर्पित हुआ है, हम लोगों के लिए जो भी मंगलमय है, वह ईश्वर आपके हाथों से ही दिलाएँगे।"

थोड़ी देर परेशबाबू बिना कुछ बोले बैठे रहे। फिर उन्होंने कहा, "विनय, तब तुम ब्रह्म नहीं होओगे?"

विनय ने कहा, "नहीं।"

परेशबाबू ने पूछा, "तुम हिंदू-समाज में ही रहना चाहते हो?"

विनय ने कहा, "हाँ।"

तब परेशबाबू ने ललिता के चेहरे की ओर देखा, ललिता ने उनके मन का भाव समझकर कहा, "बाबा, मेरा जो भी धर्म है वह मेरा है और बराबर रहेगा। मुझे असुविधा हो सकती है, कष्ट भी हो सकता है लेकिन यह मैं किसी तरह नहीं मान सकती कि जिससे मेरा मत या मेरा आचरण भी नहीं मिलता उन्हें पराया मानकर दूर रखे बिना मेरे धर्म में बाधा होगी।"

परेशबाबू चुप ही रहे। ललिता फिर बोली, "पहले मुझे लगता था कि ब्रह्म-समाज ही एक मात्र दुनिया है और उसके बाहर जो कुछ है सब असत्य है, ब्रह्म-समाज से अलग होना जैसे समूचे सत्य से ही अलग होना है। लेकिन इधर कुछ दिनों से मुझे यह विचार बिल्कुल निराधार लगा है।"

उदास भाव से परेशबाबू तनिक मुस्करा दिए। ललिता कहती गई, "बाबा, मैं तुम्हें बता नहीं सकती कि मुझमें कितना बड़ा परिवर्तन हो गया है। ब्रह्म-समाज में जिन सब लोगों को मैं देखती हूँ उनमें बहुतों के साथ मेरा धर्ममत एक होने पर भी मैं उनके साथ किसी तरह भी एक नहीं हूँ। फिर भी ब्रह्म-समाज के केवल नाम का सहारा लेकर मैं सिर्फ उन्ही को विशेष रूप से अपना कहूँ, और पृथ्वी के बाकी सब लोगों को दूर कर दूँ, यह अब मुझे किसी तरह उचित नहीं जान पड़ता।"

परेशबाबू अपनी विद्रोही कन्या की पीठ धीरे-धीरे थपथपाते हुए कहा, "जिस समय व्यक्तिगत कारणों से मन उत्तेजित हो, उस समय क्या ठीक से विचार हो सकता है? पुरखों से लेकर आने वाली संतान तक मनुष्य की जो एक परंपरा है उसका मंगल चाहने पर ही समाज की ज़रूरत होती है,और वह ज़रूरत कृत्रिम ज़रूरत तो नहीं है। तुम्हारे भावी वंश में जो दूरव्यापी भविष्य निहित है, उसका भार जिस पर होगा वही तुम्हारा समाज है,उसकी बात क्या नहीं सोचनी चाहिए?"

विनय ने कहा, "हिंदू-समाज तो है।"

परेशबाबू ने कहा, "अगर हिंदू-समाज तुम लोगों का भार न ले- न स्वीकार करे?"

आनंदमई की बात स्मरण करके विनय ने कहा, "उसे स्वीकार कराने का जिम्मा हमें लेना होगा। हिंदू-समाज ने तो हमेशा नए-नए संप्रदायों को आश्रय दिया है, हिंदू-समाज सभी संप्रदायों का समाज हो सकता है।"

परेशबाबू ने कहा, "जबानी बहस में किसी चीज़ को एक ढंग से दिखाया जा सकता है, किंतु व्यवहार में वैसा नहीं पाया जाता। नहीं तो क्या कोई अपने पुराने समाज को जान-बूझकर छोड़ सकता है? जो समाज मनुष्य के धर्मबोध को बाहरी आचरण की बेड़ियाँ छोड़ सकता है? जो समाज मनुष्य के धर्मबोध को बाहरी आचरण की बेड़ियाँ पहनाकर एक ही जगह बंदी बनाकर रखना चाहता है, उसे मानने पर तो अपने को हमेशा के लिए कठपुतली बना लेना होगा।"

विनय ने कहा, "हिंदू-समाज की यदि ऐसी ही संकीर्ण हालत हो गई हो तो उससे उसे मुक्त करने की ज़िम्मेदारी हमें लेनी होगी होगी। हवा और प्रकाश के लिए अगर घर की खिड़कियाँ-दरवाजे बड़े कर देना यथेष्ट हो तो कोई यों ही क्रोध में आकर सारे पक्के मकान को क्यों गिराना चाहेगा?"

ललिता कह उठी, "बाबा, मेरी समझ में यह बातें नहीं आतीं। किसी समाज की उन्नति का जिम्मा लेने का मेरा कोई इरादा नहीं है। लेकिन चारों ओर से ऐसा अन्याय मुझे बेध रहा है कि मेरा दम घुटने लगा है। यह सब सहकर सिर ऊँचा किए रहना मुझे किसी तरह या किसी भी कारण ठीक नहीं जान पड़ता। उचित-अनुचित भी मैं अच्छी तरह नहीं समझ सकती- लेकिन बाबा, यह मुझ से नहीं होता।"

स्निग्ध स्वर में परेशबाबू ने कहा, "और कुछ समय लेना क्या अच्छा न होगा? अभी तुम्हारा मन चंचल है।"

ललिता ने कहा, "समय लेने में मुझे कोई ऐतराज नहीं है। लेकिन यह मैं निश्चय जानती हूँ कि झूठी बातें और अन्याय-अत्याचार बढ़ते ही जाएँगे। इसलिए मुझे बड़ा भय लगता है कि असहय हो जाने पर कहीं मैं अचानक ऐसा कुछ न कर बैठूँ जिससे तुम्हें दु:ख हो। बाबा, तुम ऐसा न समझो कि मैंने कुछ सोच-विचार नहीं किया। मैंने अच्छी तरह सोचकर देख लिया है कि मेरे संस्कार और मेरी शिक्षा जैसी है उससे ब्रह्म-समाज के बाहर शायद मुझे बहुत कष्ट और संकोच भी झेलना पड़ सकता है- लेकिन मेरा मन उससे ज़रा भी कुंठित न होगा, बल्कि मन के अंदर एक शक्ति और

आनंद जाग रहा है। मुझे एक ही बात की सोच है बाबा, कि कहीं मेरा कोई काम तुम्हें किसी तरह की तकलीफ न पहुँचाए।"

यह कहकर ललिता धीरे-धीरे परेशबाबू के पैरों पर हाथ फेरने लगी।

थोड़ा मुस्कराकर परेशबाबू ने कहा, "बेटी, अगर मैं अकेली अपनी बुध्दि पर ही निर्भर करता तो मेरी इच्छा और मेरे मत के विपरीत कोई काम होने पर मुझे कष्ट न होता। लेकिन तुम लोगों के मन में जो आवेग उत्पन्न हुआ है वह संपूर्णतया अमंगल ही है, ऐसा मैं दावा करके नहीं कह सकता। मैं भी एक दिन विद्रोह करके घर छोड़कर चला आया था, किसी सुविधा-असुविधा की बात तब मैंने सोची ही नहीं। आजकल बराबर समाज पर यह जो घात-प्रतिघात हो रहे हैं इनसे समझा जा सकता है कि उसी (ईश्वर) की शक्ति अपना काम कर रही हैं वह चारों ओर से तोड़-फोड़, सँवार-सुधारकर किस चीज़ को कैसे बनाना चाहता है, यह मैं कैसे जान सकता हूँ? सँवार-सुधार किस चीज़ को कैसे बनाना चाहता है, यह मैं कैसे जान सकता हूँ? उसके लिए क्या ब्रह्म-समाज और क्या हिंदू-समाज, वह तो मनुष्य मात्र को देखता है।"

इतना कहकर थोड़ी देर ऑखें बंद करके परेशबाबू जैसे अपने हृदय के एकांत में अपना समाधान करते रहे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, "देखो विनय, हमारे देश का समाज धर्म-विश्वासों के साथ संपूर्णतया बँधा हुआ है। इसीलिए हमारे सभी सामाजिक क्रिया-कर्म के साथ धार्मिक अनुष्ठान जुड़े हुए है। जो लोग धर्म-विश्वास के दायरे के बाहर हैं उन्हें समाज के दायरे में किसी तरह नहीं लिया जा सकता, इसीलिए उसके लिए मार्ग नहीं रखा गया। इस बात को तुम लोग कैसे टालोगे, मैं तो यह सोच नहीं पाता।"

यह बात ललिता ठीक तरह नहीं समझ सकी, क्योंकि दूसरे समाज की प्रथाओं से उसके समाज का वैभिन्न्य उसके सामने नहीं हुआ था। उसकी यही धारणा थी कि मोटे तौर पर दोनों के आचार-अनुष्ठान में बहुत ज्यादा अंतर नहीं है। जैसे उसने विनय में और अपने घर के लोगों में कोई विशेष अंतर अनुभव नहीं किया था, वैसे ही दोनों समाजों की परस्पर स्थिति भी वह समझती थी। वह यह भी नहीं जानती थी कि उसके लिए हिंदू पध्दति से विवाह-अनुष्ठान में कोई विशेष बाधा भी हो सकती है।

विनय ने कहा, "हम लोगों में विवाह शालिग्राम स्थापित करके होता है, आप क्या उसी की बात कह रहे हैं?"

परेशबाबू ने एक बार ललिता की ओर देखकर कहा, "हाँ! लति, तुम क्या वह स्वीकार कर सकोगी?"

विनय ने ललिता के चेहरे की ओर देखा। वह समझ गया कि ललिता का समस्त अंत:करण संकुचित हो उठा है।

ललिता के हृदय का आवेग एक ऐसे बिंदु पर आ पहुँचा था जो उसके लिए बिल्कुल अपरिचित और संकटमय था। विनय के मन में इससे बड़ी करुणा उपजी। सारा संताप अपने ऊपर इसे किसी तरह बचाना होगा। इतना बड़ा तेज हारकर लौट जाए यह भी उतना ही असह्य है, और विजय के दुर्दम उत्साह में वह मृत्यु बाण छाती पर झेल ले यह भी उतना ही दारुण! उसे विजई भी बनाना होगा, उसकी रक्षा भी करनी होगी।....

थोड़ी देर ललिता सिर झुकाए बैठी रही। फिर एक बार विनय की ओर करुण दृष्टि से देखती हुई बोली, "आप क्या सचमुच शालिग्राम को मानते हैं?"

फौरन विनय ने कहा, "नहीं क्या मानता। शालिग्राम मेरे लिए देवता नहीं हैं, मेरे लिए कोई एक सामाजिक चिन्ह हैं।"

ललिता ने कहा "मन-ही-मन जिसे केवल चिन्ह मानते हैं, बाहर से तो उसे देवता स्वीकार करना होगा?"

परेशबाबू की ओर देखकर विनय ने कहा, "मैं शालिग्राम नहीं रखूँगा।"

परेशबाबू कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए। बोले, "विनय, तुम लोग सारी बात ठीक तरह सोचकर नहीं देख रहे हो। बात अकेले तुम्हारे या और किसी के मतामत की नहीं है। विवाह केवल व्यक्तिगत कर्म नहीं है, वह सामाजिक कर्म है, यह बात भूल जाने से कैसे चलेगा? तुम लोग थोड़े दिन और सोचकर देख लो, अभी एकाएक कुछ तय मत कर लो।"

परेशबाबू इतना कहकर बाहर बगीचे में चले गए और वहीं अकेले टहलने लगे।

ललिता भी उठकर जाने को हुई पर कुछ रुककर विनय की ओर लौटकर बोली, "हम लोगों की इच्छा अगर अनुचित नहीं है तो उसके किसी एक समाज के विधान से पूर्णत: मेल न खाने के कारण ही हमें सिर नीचा करके वापस लोट जाना होगा, मेरी

समझ में यह किसी तरह नहीं आता। समाज में मिथ्या आचरण के लिए स्थान है, और सच्चाई के लिए नहीं है?"

धीरे-धीरे विनय ने ललिता के पास आकर खड़े होकर कहा, "मैं किसी समाज से नहीं डरता। हम दोनों मिलकर अगर सच्चाई का आश्रय लें तो हमारे समाज के बराबर सहनशील समाज और कहाँ मिलेगा?"

तभी वहाँ ऑंधी की तरह वरदासुंदरी ने आकर कहा, "विनय, सुनती हूँ कि तु दीक्षा नहीं लोगे?"

विनय बोला, "मैं उपयुक्त गुरु से दीक्षा लूँगा, किसी समाज से नहीं।"

बहुत बिगड़कर वरदासुंदरी ने कहा, "तुम्हारे इस सब षडयंत्र और धोखाधड़ी का अर्थ क्या है? दीक्षा लेने का बहाना करके दो दिन तक मुझे और सारे ब्रह्म-समाज को चक्कर में डालने का क्या आचरण था तुम्हारा? ललिता का तुम कैसे सर्वनाश किए दे रहे हो, क्या तुमने यह बात एक बार भी नहीं सोची!"

ललिता ने कहा, "विनय बाबू के दीक्षा लेने पर तुम्हारे ब्रह्म-समाज के सारे लोग तो सहमत नहीं हैं अखबार में तो पढ़कर देख ही लिया! ऐसी दीक्षा लेने की ज़रूरत क्या है?"

वरदासुंदरी ने कहा, "दीक्षा लिए बिना विवाह कैसे होगा?"

ललिता ने कहा, "क्यों नहीं होगा?"

वरदासुंदरी बोलीं, "क्या हिंदू पध्दति से होगा?"

विनय ने कहा, "वह भी हो सकता है। इसमें जो भी अड़चन है वह दूर कर दूँगा।"

वरदासुंदरी के मुँह से थोड़ी देर कोई बात ही नहीं निकली। फिर उन्होने रुँधे गले से कहा, "विनय, तुम जाओ, यहाँ से चले जाओ! इस घर में फिर कभी न आना!"

सुचरिता जानती थी कि आज गोरा अवश्य आएगा। सबरे से ही उसका दिल रह-रहकर काँप उठता था। गोरा के आने की आशा के साथ-साथ उसके मन में एक भय भी बैठा हुआ था। कारण कि जिधर गोरा उसे खींच रहा था, और उसके जीवन रूपी पेड़ की जड़ें और डालें बचपन से ही जिस दिशा में बढ़ती रही थीं, उनमें पग-पग पर जो संग्राम हो रहा था वह उसे विचलित किए दे रहा था।

इसीलिए कल मौसी के कमरे में जब गोरा ने देवता को प्रणाम किया तब सुचरिता के मन में तीर-सा चुभ गया। गोरा ने प्रणाम कर ही लिया तो क्या, और उसका ऐसा विश्वास हो ही तो क्या, यह कहकर वह अपने को किसी तरह शांत न कर सकी।

जब कभी उसे गोरा के आचरण में ऐसा कुछ दीखता जिसके साथ उसके अपने धर्म-विश्वास का मूलगत विरोध हो, तब सुचरिता का मन आशंका से काँप उठता। यह किस झंझट में विधाता उसे डाल रहे हैं।

नए मत की अभिमानिनी सुचरिता के सामने अच्छा उदाहरण रखने के लिए आज भी हरिमोहिनी गोरा को अपने पूजा-घर में ले गईं, और आज फिर गोरा ने देवता को प्रणाम किया। गोरा के उठकर सुचरिता के कमरे में आते ही सुचरिता ने उससे पूछा, "आप क्या इस देवता में श्रध्दा रखते हैं?"

गोरा ने कुछ अस्वाभाविक आग्रह से कहा, "हाँ, ज़रूर रखता हूँ!"

सुचरिता यह उत्तर सुनकर सिर झुकाए बैठी रही। उसकी इस नम्र-नीरव वेदना से गोरा के मन को थोड़ी पीड़ा पहुँची। जल्दी से उसने कहा, "देखो,मैं तुमसे सच बात कहूँ। मैं मूर्ति में श्रध्दा रखता हूँ या नहीं, यह तो ठीक-ठीक नहीं कह सकता, किंतु मैं अपने देश की श्रध्दा में श्रध्दा रखता हूँ। इतने युगों से सारे देश की पूजा जहाँ पहुँचती रही है। मेरे लिए वह पूजनीय है। मैं किसी सूरत में ख्रिस्तान मिशनरियों की तरह उसकी ओर विष-भरी नज़र से नहीं देख सकता।"

मन-ही-मन सुचरिता कुछ सोचती हुई गोरा के चेहरे की ओर देखती रही। गोरा ने कहा, "मेरी बात ठीक-ठीक समझना तुम्हारे लिए बहुत मुश्किल है, यह मैं जानता हूँ। उसका कारण यही है कि संप्रदाय के भीतर रहते हुए इन सब तथ्यों की ओर मनुष्य होकर सहज दृष्टि से देखने की शक्ति तुम लोगों में नहीं रही। जब तुम अपनी मौसी के कमरे में मूर्ति को देखती हो तो केवल पत्थर को ही देखती हो जबकि मैं तुम्हारी मौसी के भक्तिपूर्ण करुण हृदय को देखता हूँ। वह देखकर क्या मैं क्रोध या अवज्ञा कर सकता हूँ? तुम क्या समझती हो कि उस हृदय का देवता सिर्फ पत्थर का देवता है?"

सुचरिता ने कहा, "श्रध्दा करना ही क्या काफी है? जिसमें श्रध्दा, यह क्या बिल्कुल नहीं सोचना होगा?"

कुछ उत्तेजित होकर गोरा ने कहा, "मतलब यह कि तुम समझती हो, एक सीमाबध्द पदार्थ को ईश्वर कहकर पूजा करना भ्रम है। लेकिन सीमा का निर्णय क्या देश-काल की दिशा से ही करना होगा? सोचो कि ईश्वर के बारे में शास्त्र का कोई वाक्य याद करने से तुम्हारे मन में श्रध्दा जागती है,तब जिस पन्ने पर वह वाक्य लिखा है उसी को नापकर और उसके अक्षर गिनकर ही क्या तुम उस वाक्य का महत्व निश्चित करोगी? भाव की असीमता तो विस्तार की असीमता से कहीं बड़ी चीज़ है। चंद्र, सूर्य और तारों-भरे अनंत आकाश की अपेक्षा तुम्हारी मौसी के लिए यह छोटी-सी मूर्ति ही वास्तव में असीम है। तुम परिमाण में असीम को ही असीम मानती हो, इसीलिए तुम्हें ऑंखें बंद करके असीम की बात सोचनी होती है। उसका कोई फल मिलता है कि नहीं, मैं नहीं जानता। लेकिन मन के असीम को ऑंखें खोलकर छोटी-सी चीज़ में भी पाया जा सकता है। यदि न पाया जा सकता तो संसार के सब सुख नष्ट हो जाने पर भी तुम्हारी मौसी उस एक मूर्ति को ऐसे जकड़कर पकड़े हुए कैसे रह सकतीं? हृदय का इतना बड़ा सूनापन क्या खेल-ही-खेल में एक पत्थर के टुकड़े से भर दिया जा सकता? भाव की असीमता के बिना मानव-हृदय की रिक्ति भरी ही नहीं जा सकती।"

इन सब सूक्ष्म तर्कों का जवाब देना सुचरिता के बस की बात नहीं थी, लेकिन इन्हें सत्य मान लेना भी उसके लिए बिल्कुल असंभव था। इसलिए एक शब्दहीन निरुपाय वेदना मन को कचोटती रह जाती।

गोरा के मन में विरोध पक्ष से तर्क करते समय कभी भी ज़रा-सी दया का संचार नहीं होता। बल्कि ऐसे मौकों पर उसके मन में किसी शिारी जंतु-सी कठोर हिंस्रता जाग उठती। परंतु सुचरिता की निरुत्तर हार से आज उसका मन न जाने क्यों व्यथित होने लगा। उसने अपने स्वर को भरसक कोमल करते हुए कहा, "तुम लोगों के धर्म-मत के विरुध्द मैं कुछ नहीं कहना चाहता। मेरी बात सिर्फ इतनी है कि जिसे तुम मूर्ति कहकर बुराई कर रही हो वह मूर्ति क्या है, यह केवल ऑंखों से देखकर जाना ही नहीं जा सकता। उससे जिसके मन को शांति मिली है, जिसका हृदय तृप्त हुआ है,जिसके जीवन को सहारा मिला है, वही जानता है कि वह मूर्ति मृण्मय है कि चिन्मय, ससीम है कि असीम। मैं तुमसे कहता हूँ, हमारे देश का कोई भी भक्त ससीम की पूजा नहीं करता। सीमा में ही सीमा को भूला देना- यही तो उनकी भक्ति का असली आनंद है!"

सुचरिता ने कहा, "लेकिन सभी तो भक्त नहीं होते!"

गोरा ने कहा, "जो भक्त नहीं है उनके किसी की भी पूजा करने से किसी का क्या आता-जाता है? ब्रह्म-समाज में भी जिनमें भक्ति नहीं है वे क्या करते हैं? उनकी सारी पूजा किसी अतल शून्य में जा गिरता है। नहीं, बल्कि वह तो शून्यता से भी ज्यादा भयानक है-क्योंकि गुटबंदी ही उनका देवता है और अहंकार उनका पुरोहित। इस रक्त-पिपासु देवता की पूजा क्या तुम लोगों के समाज में कभी नहीं होती?"

सुचरिता ने इस बात का कोई उत्तर न देकर गोरा से पूछा, "धर्म के बारे में आप यह जो कुछ कह रहे हैं, वह क्या अपनी जानकारी से ही कह रहे हैं?"

कुछ मुस्कराकर गोरा ने कहा, "यानी तुम यह पूछना चाहती हो कि मैंने कभी ईश्वर को चाहा है या नहीं। नहीं, मेरा मन इधर नहीं गया।"

यह बात सुचरिता के लिए कोई प्रसंन्न होने की नहीं थी, लेकिन फिर भी उसे जैसे तसल्ली मिली। इस मामले में अधिकारपूर्ण ढंग से कुछ कहने की स्थिति गोरा की नहीं है, इससे उसे एक प्रकार की निश्चिंतता ही हुई।

गोरा ने कहा, "किसी को धर्म-शिक्षा दे सकने का मेरा कोई इरादा नहीं है। लेकिन मेरे देश के लोगों की भक्ति का तुम लोग उपहास करो, यह भी मैं नहीं सह सकता। तुम अपने देश के लोगों को पुकारकर कहती हो- तुम लोग मूर्ख हो, तुम लोग मूर्तिपूजक हो। मैं उन सबको पुकारकर कहना चाहता हूँ- नहीं, तुम लोग मूर्ख नहीं हो, तुम लोग मूर्तिपूजक भी नहीं हो, तुम लोग ज्ञानी हो, भक्त हो। मैं अपनी श्रध्दा के द्वारा देश के लोगों को हमारे धर्म-तत्व की महत्ता और भक्ति-तत्व की गंभीरता के प्रति जागृत करना चाहता हूँ, उनकी जो धरोहर है उसमें उनका स्वाभिमान जगाना चाहता हूँ। मैं उनका सिर झुकाना नहीं चाहता, न यही चाहता हूँ कि उनमें अपने प्रति धिक्कार का भाव पैदा हो और वे सत्य के प्रति अंधे हो जाएँ। यही मेरा संकल्प है। तुम्हारे पास भी आज मैं इसीलिए आया हूँ। जब से मैंने तुम्हें देखा है तब से एक नई बात दिन-रात मेरे मन में चक्कर काटती रहती है जो मैंने पहले कभी नहीं सोची थी। मैं बराबर यही सोच रहा हूँ कि संपूर्ण भारतवर्ष केवल पुरुषों की दृष्टि से तो प्रत्यक्ष नहीं हो सकेगा। हमारी स्त्रियों की आँखों के सामने जिस दिन भारतवर्ष का आविर्भाव होगा उसी दिन यह पूर्णत: प्रत्यक्ष हो सकेगी। मेरे मन में यही आकांक्षा धधक रही है कि मैं तुम्हारे साथ एक दृष्टि से और एक ही साथ अपने देश को अपने सामने प्रत्यक्ष कर सकूँ। अपने भारतवर्ष के लिए मैं पुरुष तो केवल श्रम कर सकता हूँ या मर सकता हूँ, लेकिन दीप जलाकर उसकी आगवानी तुम्हारे अलावा कौन कर सकता है? तुम अगर उससे दूर रहोगी तो भारतवर्ष की सेवा सत्य नहीं हो सकेगी।"

हाय, कहाँ था भारतवर्ष! कहाँ कितनी दूर थी सुचरिता! और कहाँ से आ गया भारत का यह पुजारी, यह भावों में डूबा हुआ तापस! सभी को ठेलकर क्यों वह उसी के पास आ खड़ा हुआ? सभी को छोड़कर उसने क्यों उस अकेली को पुकारा? उसने कोई बंधन नहीं माना, कोई संशय नहीं किया, कहा, "तुम्हारे बिना नहीं चलेगा, तुम्हें लेने आया हूँ, तुम निर्वासित ही रहोगी तो यज्ञ संपन्न नहीं हो सकेगा।" सुचरिता की ऑंखों से विवशतावश ऑंसू झरने लगे; क्यों, यह स्वयं न समझ सकी।

गोरा ने सुचरिता के चेहरे की ओर देखा। उस दृष्टि के सामने सुचरिता ने अपना ऑंसू भरी ऑंखें झुकाई नहीं। वे ऑंखें जैसे चिंता-युक्त ओस-भीगे फूल की तरह अत्यंत आत्मविस्मृत भाव से गोरा के चेहरे की ओर खिलती रहीं।

सुचरिता की उन संकोच-विहीन, शंका-विहीन ऑंसू ढली ऑंखों के सामने गोरा की समस्त प्रकृति वैसे ह काँपने लगी जैसे भूकंप से संगमरमर का महल काँपने लगता है। पूरा ज़ोर लगाकर गोरा अपने को सँभालने के लिए मुड़कर खिड़की से बाहर देखने लगा। तब साँझ हो गई थी। गली एक रेखा-सी संकीर्ण होती हुई जहाँ सड़क से मिलती थी वहाँ खुले आकाश में काले पत्थर जैसे अंधेरे के ऊपर तारे दीखने लगे थे। आकाश का वह टुकड़ा और वे कुछ-एक तारे आज गोरा के मन को न जाने कहाँ खींच ले गए- संसार के सभी दावों से, इस अभ्यस्त दुनिया के रोज़ाना के काम-काज से कितनी दूर! यह थोड़ा-सा आकाश और ये कुछ-एक तारे संपूर्ण निर्लिप्त होकर न जाने कितने साम्राज्यों के उत्थान-पतन न जाने कितने युग-युगांत के कितने प्रयासों और कितनी प्रार्थनाओं का उल्लंघन करते आए हैं, फिर भी जब किसी अतल गहराई के बीच से एक हृदय दूसरे हृदय को पुकारता है तब विश्व के एकांत में वह नीरव व्याकुलता जैसे उस सुदूर आकाश और उन तारों को स्पंदित कर देती है। पल-भर के लिए गोरा की ऑंखों के सामने कामकाजी कलकत्ता की सड़कों पर गाड़ी-घोड़ों और राह चलने वालों की चहल-पहल किसी छाया-चित्र-सी अवास्तव हो गई, और शहर का कोलाहल उस तक पहुँच ही न सका। उसने अपने हृदय में झाँककर देखा- वहाँ भी उसी आकाश जैसा निस्तब्ध निभृत अंधकार था जिसके भीतर से दो सरल,करुण, जल-भरी ऑंखें अनादिकाल से अपलक अनंतकाल की ओर ताक रही थीं।

हरिमोहिनी की आवाज़ सुनकर गोरा चौंककर मुड़ा।

**"भैया, कुछ मुँह मीठा कर जाओ।"**

जल्दी से गोरा ने कहा, "आज नहीं। आज मुझे क्षमा कर दें- मुझे अभी जाना है।" और गोरा उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना तेज़ी से उतरकर चला गया।

विस्मित होकर हरिमोहिनी ने सुचरिता की ओर देखा। सुचरिता भी कमरे से चली गई। हरिमोहिनी सिर हिला-हिलाकर सोचने लगीं- यह अब क्या मामला है?

थोड़े समय बाद ही परेशबाबू आ पहुँचे। सुचरिता के कमरे में उसे न पाकर उन्होंने हरिमोहिनी के पास जाकर पूछा, "राधारानी कहाँ है?"

कुछ खीझे हुए स्वर में हरिमोहिनी ने कहा, "क्या पता! अभी तक तो बैठक में गौरमोहन के साथ बातचीत हो रही थी, अब जान पड़ता है छतपर अकेले टहला जा रहा है।"

आश्चर्य से परेशबाबू ने पूछा, "इस ठंड में इतनी रात गए छत पर?"

हरिमोहिनी ने कहा, "जरा ठंडी हो ले। आजकल की लड़कियों को ठंड से कोई नुकसान नहीं होता।"

हरिमोहिनी का मन बेचैन था, इसीलिए उन्होंने गुस्से के कारण सुचरिता को खाने के लिए भी नहीं बुलाया। उधर सुचरिता को भी समय का ज्ञान न था।

अचानक परेशबाबू को स्वयं छत पर आते देखकर सुचरिता अत्यंत लज्जित हो उठी। बोली, "बाबा, चलो नीचे चलो- तुम्हें ठंड लग जाएगी।"

कमरे में आकर दीए के प्रकाश में परेशबाबू का दुविधाग्रस्त चेहरा देखकर सुचरिता के मन को धक्का लगा। इतने दिनों से जो उस पितृहीना के पिता थे, आज सुचरिता बचपन से बने हुए सब बंधन तोड़कर उनसे दूर खींची जा रही थी। इसके लिए अपने को वह किसी प्रकार माफ नहीं कर सकती थी। परेशबाबू के क्लांत भाव से कुर्सी पर बैठ जाने पर सुचरिता अपने बेबस ऑंसू छिपाने के लिए उनकी कुर्सी के पीछे खड़े होकर धीरे-धीरे उनके पके बालों में उँगलियाँ फेरने लगी।

परेशबाबू ने कहा, "विनय ने दीक्षा ग्रहण करने से इंकार कर दिया है।"

सुचरिता ने कोई जवाब नहीं दिया। परेशबाबू ने फिर कहा, "विनय के दीक्षा लेने के प्रस्ताव के बारे में मुझे यों भी काफी संदेह था, इसलिए इससे मुझे कोई खास दु:ख

नहीं हुआ- लेकिन ललिता की बात से मुझे लगता है कि विनय के दीक्षा न लेने पर भी उसके साथ विवाह में उसे ऐतराज नहीं जान पड़ता।"

सहसा सुचरिता ने बड़े ज़ोर से कहा, "नहीं बाबा, यह कभी नहीं हो सकता। किसी तरह नहीं!"

इतनी अनावश्यक घबराहट दिखाकर सुचरिता कभी बात नहीं करती, इसलिए उसके स्वर के इस आकस्मिक बल पर परेशबाबू को मन-ही-मन अचरज हुआ। उन्होंने पूछा, "क्या नहीं हो सकता?"

सुचरिता बोली, "विनय ब्रह्म न हुए तो ब्याह मत से होगा?"

परेशबाबू बोले, "हिंदू मत से?"

'ज़ोर से सिर हिलाकर सुचरिता ने कहा, "नहीं-नहीं! आजकल ये सब कैसी बातें हो रही हैं! ऐसी बात तो मन में भी न लानी चाहिए। इतना सब हो जाने पर क्या ललिता का विवाह मूर्ति-पूजा की रीति से होगा! यह मैं किसी तरह न होने दे सकूँगी।"

गोरा ने सुचरिता के मन को आकर्षित कर लिया था, शायद इसीलिए आज वह हिंदू रीति से विवाह होने की बात पर इतना आवेश प्रकट कर रही थी। उसकी आपत्ति का भीतरी अभिप्राय यही था कि सुचरिता कहीं गहरे-गहरे में दृढ़ होकर परेशबाबू को पकड़कर कहना चाहती थी- तुम्हें नहीं छोड़ूँगी, मैं अब भी तुम्हारे समाज की हूँ, तुम्हारे मत की हूँ, तुम्हारी शिक्षा का बंधन कभी नहीं तोड़ूँगी।"

परेशबाबू ने कहा, "विनय इसके लिए राज़ी है कि विवाह के अनुष्ठान में शालिग्राम को न लाया जाए।"

कुर्सी के पीछे से आकर सुचरिता परेशबाबू के सामने कुर्सी खींचकर बैठ गई। परेशबाबू ने उससे पूछा, "इसमें तुम्हारी क्या राय है?"

थोड़ी देर चुप रहकर सुचरिता ने कहा, "तो फिर ललिता को हमारे समाज से निकल जाना होगा।"

परेशबाबू ने कहा, "इसी बात को लेकर मुझे बहुत सोचना पड़ा है। जब समाज में से किसी मनुष्य का विरोध उठ खड़ा होता है तब दो बातें सोचकर देखने की होती है। एक तो दोनों पक्षों में से न्याय किसकी ओर है और दूसरे प्रबल कौन है। इसमें तो

कोई संदेह नहीं कि समाज प्रबल है,इसीलिए विद्रोही को कष्ट भोगना ही होगा। ललिता ने बार-बार मुझसे कहा है, कष्ट स्वीकार करने के लिए वह केवल प्रस्तुत ही नहीं है, बल्कि उसमें आनंद भी पा रही है। यदि यह बात सच है तो जब तक मुझे उसका काम अनुचित न लगे मैं उसमें हस्तक्षेप कैसे कर सकता हूँ?"

सुचरिता ने कहा, "लेकिन बाबा, यह होगा कैसे?"

परेशबाबू बोले, "मैं जानता हूँ कि इसमें एक कठिनाई उपस्थिति होगी। लेकिन ललिता के साथ विनय के विवाह में अगर कोई दोष नहीं है,बल्कि वह उचित है, तब समाज अगर बाधा दे तो उसे मानना कर्तव्य नहीं है, ऐसा मेरा मन कहता है। समाज के लिए मनुष्य को संकुचित होकर रहना पड़े यह कभी उचित नहीं हो सकता, समाज को ही मनुष्य के लिए अपने को बराबर प्रशस्त करते चलना होगा। इसलिए जो कष्ट स्वीकार करने को तैयार हैं मैं तो उन्हें गलत नहीं कह सकता।"

सुचरिता ने कहा, "बाबा, इसमें सबसे अधिक कष्ट तो तुम्हीं को भुगतना होगा?"

परेशबाबू ने कहा, "वह बात कोई चिंता की बात नहीं है।"

सुचरिता ने पूछा, "बाबा, तुमने क्या सम्मति दे दी है?"

परेशबाबू ने कहा, "नहीं, अभी नहीं दी। लेकिन देनी ही होगी। ललिता जिस मार्ग पर चल रही है उस पर मेरे अलावा और कौन उसे आशीर्वाद देगा, और ईश्वर के सिवा और कौन सहायक होगा?"

परेशबाबू के चले जाने पर सुचरिता स्तब्ध होकर बैठी रही। परेशबाबू ललिता को मन-ही-मन कितना चाहते हैं, यह वह जानती थी। वही ललिता बँधी लीक छोड़कर इतने बड़े अज्ञात पथ में प्रवेश करने जा रही है, इससे उनका मन कितना उद्विग्न होगा यह वह समझ सकती थी। फिर भी इस उम्र में वह इतने बड़े विप्लव में सहायता करने जा रहे हैं, और इस पर कितने कम विक्षुब्ध हैं! अपना बल वह कभी प्रकट नहीं करते, किंतु उनके भीतर कितना अपार बल अनायास ही अपने को छिपाए हुए बैठा है।

पहले तो होता तो परेशबाबू की प्रकृति का यह परिचय सुचरिता को विचित्र न जान पड़ता, क्योंकि परेशबाबू को वह बचपन से ही तो देखती आई है। लेकिन आज थोड़ी देर पहले ही तो उसके समूचे अंत:करण ने गोरा का आघात सहा था, इसलिए दोनों के

स्वभाव की संपूर्ण भिन्नता का मन-ही-मन तीव्र अनुभव किए बिना वह न रह सकी। गोरा के लिए उसकी अपनी इच्छा कितनी प्रबल है! और अपनी इच्छा को बलपूर्वक काम में लाकर वह दूसरे को कैसे अभिभूत कर डालता है। गोरा के साथ जो कोई व्यक्ति जो भी संबंध स्वीकार करेगा, गोरा की इच्छा के समक्ष उसे झुकना ही पड़ेगा। आज सुचरिता भी झुकी है और झुककर उसने आनंद भी पाया है। अपने को विसर्जित करके उसने ऐसा अनुभव किया है जैसे उसने कोई बहुत बड़ी चीज़ पाई हो। फिर भी आज जब परेशबाबू उसके कमरे के दीए के प्रकाश से निकलकर चिंता से सिर झुकाए हुए धीरे-धीरे बाहर के अंधकार में चले गए, तब सुचरिता ने यौवन के तेज से दीप्त गोरा के ाथ विशेष रूप से उनकी तुलना करकेअपनी भक्ति की पुष्पांजलि विशेष रूप से परेशबाबू के चरणों पर चढ़ाई। दोनों हाथ जोड़कर गोद में रखे हुए वह बहुत देर तक चुपचाप चित्रित प्रतिमा-सी बैठी रही।

आज सबरे से ही गोरा के कमरे में बड़ी हलचल थी। पहले तो महिम ने हुक्के का कश लगाते-लगाते आकर गोरा से पूछा, "तो आखिर विनय ने अपनी बेड़ियाँ काट ही दीं, क्यों?'

सहसा उनकी बात न समझकर गोरा उनके चेहरे की ओर देखता रहा।

महिम बोले, "हमसे और छिपाने से क्या होगा भला! तुम्हारे दोस्त की बात तो किसी से छिपी नहीं है- ढोल बज रहे हैं। यह देखो न!"

कहते-कहते एक बंगला अखबार महिम ने गोरा की ओर बढ़ा दिया। उसमें उसी दिन रविवार को विनय के ब्रह्म-समाज में दीक्षा लेने के मामले पर तीखी टीका-टिप्पणी की गई थी। गोरा जब जेल में था तब ब्रह्म-समाज के किसी कन्या-भारग्रस्त विशेष सदस्य ने इस दुर्बल-चित्त युवक को गुप्त प्रलोभन देकर हिंदू-समाज से फोड़ लिया था, इसी अभियोग का लेखक ने अपनी रचना में बड़ी कटु भाषा में विस्तार से वर्णन किया था।

जब गोरा ने कहा कि यह खबर वह नहीं जानता था, तब पहले तो महिम को विश्वास नहीं हुआ, फिर विनय के इस भारी धोखे पर वह बार-बार आश्चर्य प्रकट करने लगे। वह जता गए कि एक बार स्पष्ट शब्दों में शशिमुखी से विवाह करेन की स्वीकृति देने के बाद भी जब विनय इधर-उधर करने लगा तभी उन्हें समझ लेना चाहिए था कि उसका सर्वनाश शुरू हो गया है।

तभी अभिनाश ने हाँफते-हाँफते आकर कहा, "यह क्या हो गया, गौर मोहन बाबू! हम लोगों ने यह तो सपने में भी नहीं सोचा था। विनय बाबू की आखिर...."

अविनाश अपनी बात पूरी ही नहीं कर सका। विनय की इस लांछना से वह मन-ही-मन इतना खुश हो रहा था कि किसी तरह की चिंता का दिखावा करना भी उसके लिए असंभव हो गया था। देखते-देखते गोरा के गुट के सभी मुख्य-मुख्य लोग आ जुटे। विनय को लेकर उनके बीच एक बड़ी गरमागरम बहस छिड़ गई। अधिकतर लोगों ने एक ही बात कही-इस घटना में आश्चर्य की कोई विशेष बात नहीं थी, क्योंकि विनय के व्यवहार में वे बराबर एक दुर्बलता और दुविधा देखते आए थे। वास्तव में विनय कभी मन-वचन-कर्म से उनके गुट का सदस्य हुआ ही नहीं था। किसी-किसी ने कहा- विनय शुरू से ही अपने को किसी-न-किसी तरह गौरमोहन के बराबर सिध्द करने का प्रयत्न करता रहा था, जो उन्हें असह्य लगता था। जहाँ दूसरे सब भक्ति के संकोच के कारण गौरमोहन से यथोचित दूरी बनाए रहते थे, वहाँ विनय ज़बरदस्ती गोरा के साथ ऐसे घुलता-मिलता था मानो वह बाकी सबसे अलग हो और गोरा के बिल्कुल बराबर का हो। गोरा उससे स्नेह करते थे इसीलिए उसकी इस हेकड़ी को बर्दाश्त कर लेते थे। ऐसे अबोध अहंकार का ऐसा ही शोचनीय परिणाम होता है।

कोई कह रहे थे, "हम लोग विनय बाबू जितने विद्वान नहीं हैं, हमारी इतनी अधिक बुध्दि भी नहीं है। लेकिन भाई साहब, हम लोग बराबर किसी एक सिंध्दांत पर चलते हैं। हमारे मन में कुछ और, मुँह पर कुछ और नहीं होता। आज ऐसे, कल वैसे, यह हमारे बस का नहीं है। अब इस पर हमें कोई चाहें भोला कहे, चाहे मूर्ख कहे, चाहे कुछ और कहे।"

इन सब बातों में से किसी में भी गोरा ने योग नहीं दिया, चुपचाप बैठा रहा।

काफी देर हो जाने पर एक-एक करके जब सब चले गए तब गोरा ने देखा, विनय आकर उसके कमरे में प्रवेश न करके पास की सीढ़ी से सीधा ऊपर चला जा रहा हैं गोरा ने जल्दी से कमरे से निकलकर पुकारा, "विनय!"

सीढ़ियों से उतरकर विनय के कमरे में प्रवेश करते ही गोरा ने कहा, "विनय, मैंने अनजाने में कोई अपराध कर दिया है क्या- तुमने तो जैसे मुझसे नाता ही तोड़ लिया है?"

पहले से ही विनय यह सोचकर कि आज गोरा से झगड़ा हो जाएगा, मन को कड़ा करके ही आया था। पर अब गोरा का उदास चेहरा देखकर और उसके स्वर में आहत स्नेह की व्यथा का अनुभव करके उसकी वह बलपूर्वक संचित की हुई कठोरता क्षण-भर में उड़ गई। वह कह उठा, "भाई गोरा, मुझे गलत मत समझो। जीवन में अनेक परिवर्तन होते हैं, बहुत-सी चीजें छोड़ देनी पड़ती हैं, लेकिन इससे दोस्ती का नाता थोड़े ही टूट जाएगा।"

थोड़ी दूर चुप रहकर गोरा ने कहा, "विनय, तुमने क्या ब्रह्म-समाज में दीक्षा ले ली है?"

विनय ने कहा, "नहीं गोरा, ली नहीं, और लूँगा भी नहीं, लेकिन इस पर मैं कोई ज़ोर भी नहीं देना चाहता।"

गोरा ने कहा, "इसका मतलब यही है कि मैंने ब्रह्म-धर्म में दीक्षा ली या नहीं ली, इस बात को बहुत तूल देने का भाव अब मेरे मन में नहीं है।"

गोरा ने पूछा, "तो यह पूछूँ कि मन का भाव पहले कैसा था और अब कैसा हो गया है?"

विनय का मन गोरा के बात कहने के ढंग से फिर भड़क उठा। लड़ने के लिए कमरे कसते हुए उसने कहा, "पहले जब कभी सुनता था कि कोई ब्रह्म होने जा रहा है तब मन-ही-मन बहुत गुस्सा होता था, इच्छा होती थी कि उसे कुछ विशेष दंड मिले। किंतु अब ऐसा नहीं होता। मुझे लगता है मत का जवाब मत से, युक्ति का जवाब युक्ति से दिया जा सकता है, लेकिन बुध्दि के मामले में गुस्सा करके दंड देना बर्बरता है।"

गोरा ने कहा, "एक हिंदू ब्रह्म होने जा रहा है, यह देखकर अब तुम्हें गुस्सा नहीं आएगा, लेकिन ब्रह्म प्रायश्चित करके हिंदू होने जा रहा है यह देखकर तुम गुस्से से जल उठोगे- पहले से यही अंतर तो तुममें आया है।"

विनय ने कहा, "तुम यह बात गुस्से में कह रहे हो, सोचकर नहीं कह रहे हो।"

गोरा बोला, "मैं तुम पर श्रध्दा रखता हुआ ही कह रहा हूँ। ऐसा होना ही ठीक था और यदि मैं भी होता तो ऐसा ही होता। जैसे गिरगिट रंग बदलता है, वैसे ही किसी धर्म को अपनाना या छोड़ना हमारी चमड़ी के ऊपर की चीज़ होती, तब तो कोई बात ही

नहीं थी। लेकिन वह मर्म की बात है, इसीलिए उसे हल्के ढंग से नहीं लिया जा सकता। अगर किसी तरह की अड़चन न होती, किसी तरह का दंड अगर न भरना पड़ता, तो ऐसे महत्वपूर्ण विषय में कोई एक मत अपनाते या बदलते समय मनुष्य अपनी समूची बुध्दि का आवाहन क्यों करता? सत्य को वह यथार्थ सत्य मानकर ग्रहण कर रहा है या नहीं, इसकी परीक्षा तो मनुष्य को देनी ही होगी। दंड स्वीकार करना ही होगा। सत्य का व्यापार ऐसा शौकिया व्यापार नहीं है कि रत्न भी मिल जाए और दाम भी न चुकाना पड़े।"

इस पर बहस जैसे बेलगाम हो उठी। बाणों के जवाब में बाण की तरह बातों पर बातें बरसने लगीं और उनकी टकराहट से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

बहुत समय तक वाग्युध्द होने के बाद अंत में विनय ने उठकर खड़े होते हुए कहा, "गोरा, तुम्हारी और मेरी प्रकृति में एक मूलगत अंतर है। वह अभी तक किसी तरह दबा हुआ था, जब भी वह उभरकर आता था मैं स्वयं उसे दबा देता था, क्योंकि मैं जानता था जहाँ भी तुम्हें कोई अलगाव दीखता है, तुम उससे समझौता करना जानते ही नहीं- एकाएक तलवार उठाकर दौड़ते हो। इसीलिए मैं तुम्हारी दोस्ती को निबाहते चलने के लिए बराबर अपनी प्रकृति को कुचलता आया हूँ लेकिन आज समझ सकता हूँ कि इससे मंगल नहीं हुआ और हो भी नहीं सकता।"

गोरा ने कहा, "खैर, अब तुम्हारी क्या इच्छा है सो साफ-साफ कहो।"

विनय ने कहा, "आज मैं अकेला अपने पैरों पर खड़ा हूँ। समाज नाम के दैत्य को रोज़ाना मनुष्य-बलि देकर उसे खुश रखना होगा और जैसे भी हो उसी के शासन का फंदा गले में डाले रहना होगा, चाहे प्राण रहे या न रहे- यह मैं किसी तरह नहीं स्वीकार कर सकूँगा।

गोरा ने पूछा, "तो महाभारत के उस ब्राह्मण शिशु की तरह तिनका लेकर बकासुर को मारने निकल रहे हो क्या?"

विनय ने कहा, "मेरे तिनके से बकासुर मरेगा या नहीं यह तो नहीं जानता, लेकिन मुझे कच्चा चबा जाने का अधिकार उसे है, यह बात मैं हरगिज नहीं मानूँगा। उसके चबाना शुरू कर देने पर भी नहीं।"

गोरा ने कहा, "अब तुम रूपक का सहारा लेकर बात करने लगे, अब समझना ही मुश्किल हो रहा है।"

विनय ने कहा "तुम्हारे लिए समझना मुश्किल नहीं है, मानना ही मुश्किल है। जहाँ स्वभाव से मनुष्य स्वाधीन है, वहाँ उसके खाने-सोने-बैठने को भी हमारे समाज ने बिल्कुल निरर्थक बंधनों में जकड़ रखा है, इस बात को तुम मुझसे कम जानते हो ऐसा नहीं है, लिन समाज की इस ज़बरदस्ती को तुम मुझसे कम जानते हो ऐसा नहीं है, लेकिन समाज की इस ज़बरदस्ती को तुम अपनी ज़बरदस्ती सो मानना चाहते हो। किंतु मैं आज कह रहा हूँ, इन मामलों में मैं अब किसी का ज़ोर नहीं मानूँगा। मैं समाज का दावा उसी समय तक मानूँगा जिस समय तक वह मेरे उचित अधिकारों की रक्षा करेगा। अगर वह मुझे मनुष्य नहीं समझता, मुझे मशीन का एक पुर्जा बनाकर रखना चाहता है, तो मैं भी फूल-चंदन से उसकी नहीं करूँगा, उसे लोहे की मशीन-भर मानूँगा।"

गोरा ने कहा, "यानी संक्षेप में तुम ब्रह्म हो जाओगे?"

विनय ने कहा, "नहीं!"

गोरा ने कहा, "ललिता से विवाह करोगे?"

विनय ने कहा, "हाँ!"

गोरा ने पूछा, "हिंदू विवाह?"

विनय ने कहा, "हाँ!"

"परेशबाबू इसके लिए राज़ी हैं?"

"यह उनकी चिट्ठी है।"

गोरा ने परेशबाबू की चिट्ठी दो बार पढ़ी। उसका अंतिम अंश था- सुविधा-असुविधा की भी चर्चा करना नहीं चाहता। मेरे मत-विश्वास क्या हैं, मेरा समाज क्या है, यह तुम लोग जानते हो। बचपन से ललिता ने क्या शिक्षा पाई है और किन संस्कारों में पली है यह भी तुम लोगों से छिपा नहीं है। यह सब समझ-बूझकर ही तुम लोगों ने अपना मार्ग चुना है। मुझे और कुछ कहना नहीं है। यह न समझना कि मैंने बिना कुछ सोचे या कुछ सोच न पाकर पतवार छोड़ दी है। जहाँ तक मेरी सामर्थ्य है, मैंने विचार किया है मेरी समझ में यही आया है कि तुम लोगों के मिलन में बाधा देने का कोई धर्म-संगत कारण नहीं है, क्योंकि तुम पर मुझे पूरा विश्वास है।

ऐसी हालत में समाज में कोई आपत्ति हो तो उसे मानने को तुम लोग बाध्य नहीं हो। मुझे केवल इतना कहना है कि अगर तुम लोग समाज का उल्लंघन करना चाहते हो तो तुम्हें समाज से बड़ा होना होगा। तुम लोगों का प्रेम,तुम्हारा साझा जीवन केवल प्रलय-शक्ति का सूचक न हो, उसमें सृष्टि और स्थिति के तत्व भी रहें। केवल इस काम में अचानक एक दु:साहसिकता दिखा देने से काम नहीं चलेगा, इसके बाद तुम्हें जीवन के हर काम को हिम्मत के सूत्र में गूँथ देना होगा, नहीं तो तुम लोग बहुत नीचे चले जाओगे। क्योंकि समाज अब दूसरे आम लोगों की तरह तुम्हें बाहर से सहारा देता हुआ नहीं रहेगा- अपनी शक्ति से ही तुम लोग उन आम लोगों से बड़े न हुए तो तुम्हें उनसे भी नीचे जा पड़ना होगा। तुम लोगों के भविष्य के शुभाशुभ के बारे में मुझे बहुत चिंता है। लेकिन उस चिंता के कारण तुम लोगों का मार्ग रोकने का मुझे कोई अधिकार नहीं है।

क्योंकि दुनिया में साहस करके जो लोग अपने जीवन के द्वारा नई-नई समस्याओं का हल निकालने को तैयार होते हैं वही समाज को ऊचा उठाते हैं। जो सिर्फ नियम मानते हुए चलते हैं वे समाज को केवल ढोते हैं, उसे आगे नहीं बढ़ाते। इसलिए अपनी भीरुता और चिंता को लेकर तुम्हारा मार्ग मैं नहीं रोकूँगा। तुम लोगों ने जो ठीक समझा है, सारी प्रतिकूलताओं के विरुध्द उसी का पालन करो- ईश्वर तुम्हारे सहायक हों। अपनी सृष्टि को ईश्वर किसी एक अवस्था में जंजीर से बाँधकर नहीं रखते, उसे नए-नए परिवर्तनों के तहत निरंतर नवीन करते हुए सजग रहते हैं। तुम लोग उनके इसी उद्‌बोधन के दूत बनकर अपने जीवन को मशाल की तरह जलाकर दुर्गम मार्ग पर बढ़ रहे हो, जो विश्व के परिचालक हैं वह तुम्हें राह दिखाते रहें- तुम लोगों को हमेशा मेरे ही मार्ग पर चलना होगा, ऐसा आदेश मैं कभी नहीं दे सकूँगा। तुम लोगों की उम्र में हम लोगों ने भी एक दिन घाट से बंधन खोलकर नाव को तूफान के मुँह में डाल दिया था, किसी का निषेध नहीं सुना था।

और इसके लिए आज भी कोई अनुताप नहीं है। अनुताप करने का कोई कारण हुआ भी होता तो भी क्या था! मनुष्य भूल करता है, असफल भी होता है, दु:ख भी पाता है,लेकिन बैठा नहीं रहता, जो ठीक समझता है उसके लिए आत्म-समर्पण्ण करता है, इसी तरह पुण्य-सलिला संसार-नदी की धारा निरंतर गतिमान हुई स्वच्छ रह सकती है। इसमें बीच-बीच में कभी-कभी कगारें टूटने से नुकसान भी हो सकता है, इस डर से धारा को हमेशा के लिए बाँध देना सड़ाँध और मृत्यु को आमंत्रित करना होगा, यह मैं निश्चय जानता हूँ। इसलिए तुम लोगों को जो शक्ति दुर्निवार वेग से समाज के नियम और सुख-स्वच्छंदता के दायरे से बाहर खींचे लिए जा रही है, उसी को

भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उसी के हाथों तुम दोनों को सौंप दे रहा हूँ। वही तुम्हारे जीवन की सारी निंदा और ग्लानि को, आत्मीयों से विच्छेद को सार्थकता प्रदान करे। उसी ने तुम्हें दुर्गम मार्ग पर बुलाया है, वही तुम्हें लक्ष्य तक पहुँचा दे।"

चिट्ठी पढ़कर गोरा थोड़ी देर तक चुप रहा। फिर विनय ने कहा, "परेशबाबू ने जैसे उनकी ओर से सम्मति दे दी है, उसी तरह गोरा तुम्हें भी अपनी ओर से सम्मति देनी होगी।"

गोरा ने कहा, "परेशबाबू तो सम्मति दे सकते हैं, क्योंकि नदी की जो धारा कगार तोड़ रही है वह उन्हीं की धारा है। लेकिन मैं सम्मति नहीं दे सकता, क्योंकि हमारी धारा किनारे की रक्षा करती है। हमारे किनारे पर कितने सैकड़ों-हज़ारों वर्षों की दिगन्तव्यापी कीर्तियाँ रहीं यह हम बता ही नहीं सकते, यहाँ प्रकृति का नियम ही काम करता रहे। अपने किनारे को हम पत्थरों से बाँधकर ही रखेंगे- इसके लिए चाहे हमारी बुराई करो चाहे और कुछ। यह हमारी पवित्र प्राचीन पुरी है- इस पर हर साल बाढ़ से मिट्टी की नई पर्त चढ़ती रहे और किसानों के झुंड उसमें हल चलाया करें, ऐसा हमारा ध्येय नहीं है- इससे हमारा नुकसान होता है तो हो। यह हमारे रहने की जगह है, खेती करने की नहीं। इसलिए जब तुम लोगों का कृषि-विभाग इन पत्थरों को कड़े कहकर उनकी बुराई करता है तो हम उस पर शर्म से मर नहीं जाते।"

विनय ने कहा, "यानी संक्षेप में यह कि तुम हम लोगों के इस विवाह को स्वीकार नहीं करोगे?"

गोरा ने कहा, "निश्चय ही नहीं करूँगा।"

विनय ने कहा, "और.... "

गोरा बोला, "और तुम लोगों से नाता तोड़ लूँगा।"

गोरा ने कहा, "तब बात और होती। पेड़ की अपनी डाल टूटकर पराई हो जाए तो पेड़ उसे किसी तरह से फिर अपनी नहीं बना सकता। लेकिन बाहर से जो लता बढ़ आती है उसे आश्रय दे सकता है, वहाँ तक कि आँधी में उसके गिर जाने पर भी उसे फिर उठा देने में कोई संकोच नहीं होता। अपना जब पराया हो जाता है तब उससे बिल्कुल नाता तोड़ लेने के अलावा कोई उपाय नहीं रहता। इसीलिए तो इतने नियम-बंधन होते हैं और खींच-तान में जान की बाज़ी लगा दी जाती है।"

विनय ने कहा, "इसीलिए तो नाता तोड़ने के कारण इतने घटिया और उसकी व्यवस्था इतनी सरल नहीं होनी चाहिए। बाँह टूट जाने से फिर जुड़ती नहीं यह तो ठीक है, लेकिन इसीलिए वह बात-बात में टूटती भी नहीं, उसकी हड्डी बड़ी मजबूत होती है। जिस समाज में ज़रा-सा धक्का लगने से ही दरार आ जाती है और सदा के लिए रह जाती है, उस समाज में मनुष्य के लिए अपनी इच्छा से चलने-फिरने या काम-काज करने में कितनी कठिनाइयाँ हो जाती हैं, यह भी तो सोचना चाहिए।"

गोरा ने कहा, "यह सोचने का दायित्व मुझ पर नहीं है। समाज ऐसी समग्रता से और इतने बड़े स्तर पर सोचता है कि मुझे उसके सोचने का भान भी नहीं होता। हज़ारों बरसों से वह सोचता है और अपनी रक्षा भी करता आया है, इसका मुझे विश्वास है। पृथ्वी सूरज के चारों ओर तिरछी घूमती है कि सीधी, भटकती है कि नहीं, जैसे मैं यह नहीं सोचता और न सोचने पर भी मुश्किल में नहीं पड़ता- वैसी ही धारणा मेरी समाज के बारे में भी है।"

हँसकर विनय ने कहा, "भाई गोरा, बिल्कुल यही सब बातें मैं भी इतने दिनों से इसी ढंग से कहता आया हूँ- यह कौन जानता था कि आज मुझको ही ये सब बातें सुननी पड़ेंगी। बना-बना कर बात कहने की सज़ा मुझे भोगनी पड़ेगी, यह मैं खूब समझ रहा हूँ। किंतु बहस करने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि एक बात जिसे मैं आज खूब नजदीक से अच्छी तरह देख सका हूँ वह मैंने पहले नहीं देखी थी। मनुष्य के जीवन की गति एक महानदी-सी है, वह अपने वेग से अकल्पनीय ढंग से ऐसी नई-नई दिशाओं में मार्ग बना लेती है जिधर को पहले उसका प्रवाह नहीं था। उसकी गति का यह अनोखपन, उसके ये कल्पनातीत परिवर्तन ही विधाता का अभिप्राय होते हैं- वह कोई नहर नहीं है, उसे बँधे हुए रास्ते पर नहीं चलाया जा सकता। यह बात जब अपने जीवन में ही बिल्कुल प्रत्यक्ष हो गई है तब मुझे कभी कोई लच्छेदार बातों से बहका न सकेगा।"

गोरा ने कहा, "पतंगा जब ज्वाला की ओर दौड़ता है तब वह भी ठीक तुम्हारी तरह यही तर्क देता है-इसलिए आज मैं भी तुम्हें समझाने की व्यर्थ कोशिश नहीं करूँगा।"

कुर्सी से उठकर विनय ने कहा, "वही अच्छा है। तो चलूँ- एक बार माँ से मिल लूँ।"

जब विनय चला गया तो महिम धीरे-धीरे चलते हुए आए। पान चबाते-चबाते उन्होंने पूछा, "शायद सुलझाव नहीं हुआ? होगा भी नहीं। मैं कब से कहता चला आ रहा हूँ, सँभल जाओ, बिगड़ने के लक्षण दीख रहे हैं लेकिन मेरी बात पर कभी ध्यान ही नहीं

दिया। उसी समय किसी तरह दबाव डालकर शशिमुखी के साथ उसका ब्याह कर देते तो कोई बात ही न रहती। लेकिन 'का कस्य परिवेदना!" कहूँ भी तो किसको? जिसे कोई जान-बूझकर न समझे वह तो माथा फोड़कर भी नहीं समझाया जा सकता। अब विनय जैसा लड़का तुम्हारे गुट से अलग हो जाए, यह क्या कम लज्जा की बात है?"

गोरा ने कोई जवाब नहीं दिया। महिम फिर बोले, "आखिर विनय को रोक नहीं सके? खैर, जाने दो। लेकिन शशिमुखी के साथ उसके विवाह की बात को लेकर कुछ ज्यादा ही प्रचार हो गया। अब शशि के ब्याह में और देर करने से नहीं चलेगा। हमारे समाज के रंग-ढंग तो जानते ही हो- एक बार कोई उसकी पकड़ में आ जाए तो उसे रुलाकर ही छोड़ता है। इसीलिए एक पात्र-नहीं, नहीं घबराओ मत, तुम्हें घटक नहीं बनना पड़ेगा- मैंने खुद ही सब ठीक-ठाक कर लिया है।"

गोरा ने पूछा, "पात्र कौन है?"

महिम बोला, "यही तुम्हारा अविनाश।"

गोरा ने पूछा, "वह राज़ी है?"

महिम बोले, "राज़ी नहीं होगा! उसे क्या विनय समझ रखा है? तुम जो भी कहो, लेकिन तय यही पाया कि तुम्हारे गुट में एक अविनाश ही तुम्हारा सच्चा भक्त है। तुम्हारे परिवार के साथ उसका संबंध होगा, यह बात सुनकर वह तो खुशी से नाच उठा। बोला, यह तो मेरा सौभाग्य है, मेरा गौरव है। दहेज की रकम की बात मैंने जब पूछी तो कानों पर हाथ रखकर बोला, माफ कीजिए, इसकी तो बात भी मुझसे न कीजिए। मैंनें कहा,अच्छा, वह सब बात तुम्हारे पिता के साथ होगी। उसके बाप के पास भी गया था। बाप-बेटे में काफी अंतर देखने को मिला। रुपए की बात पर बाप ने कानों को बिल्कुल हाथ नहीं लगाया, बल्कि इस ढंग से बात करना शुरू किया कि मुझको ही कानों पर हाथ धरना पड़ गया। यह भी देखा कि लड़का इन सब मामलों में बड़ा पितृभक्त है, एकदम 'पिताहि रमं तप:'-उसे बीच में डालने से कोई ठीक नतीजा नहीं निकलेगा। अब तो कंपनी बहादुर के कुछ कागज भुनाए बिना काम होता नहीं दीखता। खैर, वह जो हो, तुम भी दो-एक बात अविनाश को कह लेना- तुम्हारी ओर से बढ़ावा मिलने पर शायद.... "

गोरा ने कहा, "उससे रकम तो कुछ कम नहीं होने की।"

महिम ने कहा, "यह तो जानता हूँ। पितृभक्ति से जब फायदा भी होता है, तब उसे सँभालना कठिन होता है।"

गोरा ने पूछा, "बात पक्की हो गई है?"

महिम बोले, "हाँ!"

"दिन, मुहूर्त सब एकदम तय है?"

"माघ महीने की पूर्णिमा को तय ही समझो। और अधिक दिन नहीं है। बाप ने कहा है, हीरे-पन्ने की ज़रूरत नहीं है लकिन गहना खूब भारी सोने का होना चाहिए। अब कैसे सोने के दाम बढ़ाए बिना उसका भार बढ़ाया जा सकता है, कुछ दिन सुनार के साथ बैठकर इसी बारे में राय-विचार करना होगा।"

गोरा ने कहा, "लेकिन इतनी जल्दी करने की क्या ज़रूरत है? अविनाश भी जल्दी ही ब्रह्म-समाज में जा मिलेगा, ऐसा तो कोई भय नहीं है!"

महिम ने कहा, "हाँ, सो तो नहीं है, लेकिन तुम लोगों ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया है कि इधर दिन-पर-दिन बाबा के शरीर की हालत गिरती जा रही है। डॉक्टर लोग जितना ही रोते हैं उतना ही वह अपने नियमों को और कड़ा बनाते जाते हैं। आजकल जो सन्यासी उनके साथ हैं वह उन्हें तीन बार स्नान कराता है, उस पर ऐसा हठ-योग भी शुरू कराया है कि आँखों की पुतलियाँ-पलकें, नि:श्वास-प्रश्वास, नाड़ी-धमनी सब एकदम उलट-पुलट हुई जा रही हैं। बाबा के रहते-रहते शशि का विवाह हो जाने में ही अच्छा है, उनकी पेंशन की जमापूँजी सब स्वामी ओंकारानंद के हाथ पड़ जाने से पहले ही काम संपन्न हो जाए तो मुझे बहुत चिंता न करनी पड़े। कल बाबा के सामने मैंने बात उठाई भी थी- देखा कि मामला इतना आसान नहीं हैं मैंने सोचा है, उस बेटा सन्यासी को कुछ दिन कस के गाँजा पिलाकर काबू में करके उसी के द्वारा काम निकलवाना होगा। यह तुम निश्चय जान लो कि जो गृहस्थ हैं, जिनको रुपए की ज़रूरत सबसे अधिक है, बाबा का रुपया उनके हिस्से नहीं आएगा। मेरी मुश्किल यही है कि दूसरे का बाप तो कसकर रुपया वसूल करना चाहता है। और अपना बाप रुपया देने की बात सुनते ही प्राणायाम करने बैठ जाता है। उस ग्यारह बरस की लड़की को अब क्या मैं गले से बाँधकर डूब मरूँ?"

# गोरा - Gora in Hindi


1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय